इकाई 8 ईसाई धर्म*

इकाई की रूपरेखा

*यह इकाई ईएसओ–15, इकाई 21 से कुछ जरूरी संस्करण के साथ अनुकूलित है।

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है, आपको ईसाई धर्म की विश्वास पद्धति और सामाजिक व्यवस्था की जानकारी देना। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपः

- ईसाई धर्म के मुख्य स्रोतों और विश्वासों पर चर्चा कर सकेंगे;
- ईसा मसीह की शिक्षाओं का विवेचन कर सकेंगे;
- ईसाई सामाजिक व्यवस्था की व्याख्या कर सकेंगे;
- ईसाई धर्म संस्था (चर्च) और विश्वव्यापी ईसाई दृष्टिकोण का विवरण दे सकेंगे; और
- भारत में ईसाई धर्म के विभिन्न पहलुओं का विवेचन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

जैसा कि बताया जा चुका है, भारत अनेक संख्यक समाज है। इस अनेक संख्यक रूप का महत्त्वपूर्ण तत्व है अनेक धार्मिक विश्वास पद्धतियों और धार्मिक रीतियों का यहाँ पर पाया जाना। धर्म, समूह संरचना का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। किसी सामाजिक समूह के विश्व दृष्टिकोण और व्यवहारगत प्रतिरूपों को अधिकांशतया उनकी धार्मिक रीतियाँ और विश्वास ही रूप देते हैं। ईसाई धर्म एक महत्त्वपूर्ण विश्व धर्म है। भारत में इस धर्म को मानने वालों की एक अच्छी खासी संख्या है। यह समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि ईसाई धर्म के बुनियादी सिद्धांतों और उसे मानने वालों के सामाजिक संगठन का विश्लेषण किया जाए और उसकी जानकारी ली जाए।

इस इकाई में हम आपको ईसाई धार्मिक विश्वास के बुनियादी सिद्धांतों की जानकारी देंगे। हम आपको भारत में ईसाई धर्म के सामाजिक, धार्मिक पहलओं की भी संक्षेप में जानकारी देंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप ईसाइयों की आस्था पद्धति के बारे में और इस लोक तथा परलोक के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे। इस इकाई में हमने ईसाई जीवन–दर्शन और आदर्श ईसाई समाज पर भी विचार किया है। इस इकाई में हमने इन बिन्दुओं पर व्यापक रूप से विचार किया है कि ईसाइयों के विश्वास का पोषण कैसे होता है, और उन्हें इस दुनिया के साथ ईसाई समुदाय के सामंजस्य के परिणामों के बारे में आत्मिक प्रेरणा कैसे मिलती है। इस इकाई में भारत में ईसाई धर्म के बारे में कुछ व्यापक दृष्टिकोणों पर भी विचार किया गया है।

वैसे तो ईसाई धर्म के मानने वालों की बड़ी संख्या यूरोप और अमेरिका महाद्वीपों के देशों में ही पाई जाती है, फिर भी इस धर्म के अनुयायी दुनिया के लगभग सभी देशों में मिलते हैं। संगठन और सिद्धांत में अंतर के आधार पर ईसाइयों में विभाजन भी मिलता है। इस धर्म में अलग–अलग नाम से पंथ और संप्रदाय पाये जाते हैं। इस धर्म के लोग मुख्य रूप से तीन वर्गों में बंटे हैं : (1) रोमन कैथोलिक चर्च, (2) ईस्टर्न ऑर्थोडॉक्स चर्च और (3) प्रोटेस्टैंट संप्रदाय। इनमें से रोमन कैथोलिक और ईस्टर्न ऑर्थोडॉक्स चर्च ईसाई धर्म के शुरू के दौर से ही हैं, जबकि प्रोटेस्टैंट संप्रदायों का उदय पिछली कुछ शताब्दियों में हुआ। इनके उदय के कारण यह रहा कि कुछ चर्चों से असंतुष्ट गुटों ने अपने अलग चर्च बना लिए। लेकिन इस इकाई में हमने ईसाई धर्म के जिन मूल्य तत्वों की चर्चा की है वे उपर्युक्त सभी चर्चों या संप्रदायों में समान

रूप से पाये जाते हैं। इन ईसाई चर्चों के अलावा क्रिश्चिन साइंसेज, जेंहोंवाज विटनेस, मोरमोनिज्म या ''लेटर डे सेंटस'', द यूनीफिकेशन चर्च या ''मूनिस'' जैसे कुछ संप्रदाय भी हैं। ये सब संप्रदाय ईसाई धर्म के संगठन होते हुए भी बाइबिल में उल्लिखित ईसाई धर्म से अत्यधिक भिन्न हैं। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में ईसाई धर्म का विवचेन करते समय हम इस इकाई में उन कुछ कार्यों को ध्यान में रखेंगे जिन्हें करने की अपेक्षा किसी धर्म से की जाती है, इन कार्यों में प्रमुख हैं अतिरिक्त सत्ता और संतुष्टि प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सहायता देना, बुराई की समस्या की व्याख्या करना, भविष्य में बेहतर जीवन के लिए आशा बंधाना, उद्धार या मोक्ष के लिए कोई योजना प्रस्तुत करना, वर्तमान जीवन के स्तर को सुधारना और आदर्श समाज की रूपरेखा रखना। इस इकाई में हमने इन सभी पहलुओं पर विचार किया है।

8.2 स्रोत और विश्वास

ईसाई धर्म के संस्थापक तो ईसा मसीह हैं, लेकिन इसकी जड़ें यहूदी परंपरा में मिलती हैं। यहूदी धर्म और इस्लाम की तरह ही ईसाई धर्म की गिनती भी परमेश्वर की ओर से प्रेरित धर्मों में होती है। इस प्रकार से प्रेरित धार्मिक ज्ञान का संग्रह ईसाइयों की पवित्र पुस्तक बाइबिल में मिलता है। बाइबिल के दो भाग हैं : पुराना नियम और नया नियम। बाइबिल की पुस्तकें विभिन्न लेखकों ने प्राचीन काल से ही समय–समय पर लिखी हैं। पुराना नियम की पुस्तकों में ईसा मसीह के जन्म से पहले की बातें हैं और इन्हें मूल रूप में हिब्रू भाषा में लिखा गया था। नया नियम में ईसा मसीह के जीवन से संबंधित बातें और उनके उपदेश मिलते हैं, इसके अलावा उसमें ईसा मसीह के प्रेरितों या शिष्यों के कामों का भी उल्लेख है। ईसाई धर्म के विकास काल का वर्णन करने वाली ये पुस्तकें मूल रूप में यूनानी भाषा में लिखी गई हैं। नया नियम की पहली चार पुस्तकों में ईसा मसीह के जीवन, मृत्यु और पुनरुत्थान का वर्णन है। इन चारों पुस्तकों को समग्र रूप में सुसमाचार (Gospels) के नाम से जाना जाता है।

8.2.1 ईसाई धर्म के संस्थापक

ईसाई धर्म का केन्द्र उसके संस्थापक ईसा मसीह की पहचान है। ऐतिहासिक हस्ती ईसा का जन्म लगभग 2000 वर्ष पहले हुआ था। वे केवल 33 वर्ष इस धरती पर रहे और उनका सार्वजनिक जीवन अंतिम तीन वर्षों में ही सामने आया। इन तीन वर्षों में उन्होंने बीमारों को ठीक किया, आश्चर्य कर्म या चमत्कार किये, यहाँ तक कि मुरदों को जिन्दा किया और अपने शिष्यों को शिक्षा दी कि वे परमेश्वर को पसंद आने वाला जीवन कैसे जी सकते हैं। लेकिन जैसा कि ईसाइयों का विश्वास है ईसा के जीवन की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि क्रूस या सलीब पर चढ़ाये जाने, मरने और कब्र में रख दिये जाने के बाद तीसरे दिन वे फिर जिन्दा हो गये और अपने शिष्यों को दिखाई दिये और फिर स्वर्ग में उठा लिए गये। यीशु अपने आपको परमेश्वर की सन्तान बताते थे और उन्होंने अपने व्यवहार में अपने इसी रूप को प्रकट किया। उन्होंने अपने अधिकार से पापियों को क्षमा किया। यहूदियों के धार्मिक गुरुओं को उनकी यही बात खटक गई। लेकिन उनके शिष्यों का विश्वास था कि वे परमेश्वर थे। इसलिए ईसाई धर्म का एक बुनियादी सिद्धांत है यह विश्वास कि ईसा मसीह सच्चे मनुष्य और सच्चे परमेश्वर हैं। अपने जीवन काल में ईसा मसीह ने अनेक शिष्य और अनुयायी बनाये। लेकिन, इन लोगों ने अपना कोई अलग समुदाय या चर्च नहीं

बनाया। यह स्पष्ट था कि अपनी मृत्यु और पुनरुत्थान के समय तक यीशु ने अपना धार्मिक उद्देश्य पूरा नहीं किया था। वास्तव में तो, ईसा मसीह का उनके शत्रुओं के हाथों पकड़ा जाना और सलीब पर उनकी दर्दनाक मौत उनके धर्म के प्रचार के काम को आगे बढ़ाने की दिशा में अवरोधक साबित हुई। अपनी मृत्यु से. एक दिन पहले जब ईसा मसीह को पकड़ा गया तो उनके साथ हमेशा बने रहने वाले उनके प्रति भयभीत हो गये और उनका साथ छोड़ गये। यहाँ तक कि उनसे कुछ दूरी रखकर चल रहा उनका प्रिय प्रेरित शिमौन पतरस भी दूसरों के तीन बार सवाल करने पर इस बात से मुकर गया कि वह ईसा मसीह को जानता था। जब ईसा मसीह अपने शत्रुओं के हाथों में शक्तिहीन दिखाई दिये तो उन्हें परमेश्वर का पुत्र मानने वाले प्रेरितों का भी मोहभंग हो गया। ईसा मसीह की मृत्यु के समय वे इस डर से छिप गये कि कहीं उन्हें पकड़ न लिया जाए।

तीसरे दिन ईसा मसीह मुरदों में से जी उठे। जैसा कि बाइबिल में लिखा है, उस दिन से लेकर, चालीसवें दिन अपने स्वर्गारोहण (स्वर्ग में उठा लिए जाने) के समय तक वे अपने प्रेरितों और अन्य शिष्यों को अनेक बार दिखाई दिये। उसी दौरान ईसा मसीह ने अपना धार्मिक उद्देश्य पूरा किया और अपने प्रेरितों को आदेश दिया कि वे उस धर्म को तमाम देशों में फैलाएं। ईसा मसीह ने उनसे कहा, ''स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है। इसलिए तुम जाकर सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ और उन्हें पिता और पुत्र और पवित्रात्मा के नाम से बपतिस्मा दो और उन्हें सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी है मानना सिखाओः और देखो, मैं जगत के अंत तक सदैव तुम्हारे संग हूँ।'' (मैथ्यू 28:18–20)

8.2.2 बाइबिल में परमेश्वर की अवधारणा

इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि बाइबिल में परमेश्वर की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है वह कुछ जटिल है। परमेश्वर एक है लेकिन बाइबिल में वह तीन रूपों में प्रकट हुआ है–पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा। परमेश्वर की इस प्रकार की अवधारणा को ''त्रयी में इकाई'' और ''इकाई में त्रयी'' का रहस्य कहकर प्रस्तुत किया जाता है। बाइबिल के अनुसार, ईसा मसीह परमेश्वर हैं–वे पुत्र हैं जिनका जन्म पवित्र आत्मा से गर्भवती हुई कुंआरी मरियम की कोख से हुआ। बाइबिल के अनुसार, ईसा मसीह का मनुष्य के रूप में जन्म इस दैवीय योजना के तहत हुआ कि मनुष्य जाति के पापों का पश्चाताप हो सके।

मनुष्य जाति के उद्धार के लिए परमेश्वर का मनुष्य के रूप में जन्म होना क्यों आवश्यक था, इसे समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि बाइबिल इस दुनिया में पाप और बुराई की उत्पति के बारे में क्या बताती है। बाइबिल यह बताती है कि परमेश्वर ने आकाश और धरती की रचना की और उसने मनुष्य जाति के आदिपूर्वज आदम (नर) और हव्वा (नारी) को अपने ही स्वरूप में बनाया। लेकिन आदम और हव्वा ने अपने सृष्टा की आज्ञा का ....

परिणामस्वरूप, समूची मनुष्य जाति को इस प्रारंभिक पाप की विरासत मिली और परमेश्वर की संतान कहलाने का अधिकार उनसे छिन गया। मनुष्य जाति के पापों का पश्चाताप केवल एक निष्पाप मनुष्य, यीशु के कष्ट उठाने और मारे जाने के माध्यम से ही संभव था और परमेश्वर ने मनुष्यों से इतना प्रेम किया कि उसने उन्हें पापों से छुटकारा दिलाने के लिए अपने इकलौते प्रिय पुत्र को पृथ्वी पर भेज दिया। इसलिए

ईसा मसीह को मनुष्य जाति का उद्धारकर्ता कहा जाता है। बाइबिल कहती है कि जो कोई उस पर विश्वास करेगा वह मोक्ष पाएगा (जॉन 3:16)।

8.2.3 बाइबिल में शरीर, आत्मा और उद्धार की अवधारणा

बाइबिल बताती है कि मनुष्य के पास शरीर और आत्मा होती है, इनमें से शरीर तो नष्ट हो जाता है किन्तु आत्मा अनंत काल तक जीवित रहती है। ईसाई धर्म में उद्धार (मोक्ष) का अर्थ होता है व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात आत्मा का उत्तरजीवी होकर स्वर्ग में सुख शांति से रहना। पुनर्जन्म के विश्वास के विपरीत, ईसाई धर्म यह सिखाता है कि मनुष्य पृथ्वी पर केवल एक बार जन्म लेते हैं, इसलिए उनके पास स्वर्गीय शांति के लिए तैयारी का केवल एक ही अवसर होता है। आदम और हव्वा के प्रारंभिक पाप ने तो मनुष्य जाति को अनंत काल तक श्रापित जीवन जीने के लिए छोड़ दिया था, लेकिन ईसा मसीह ने धरती पर दुःख उठाकर उनके उद्धार का मार्ग खोल दिया है। लेकिन कोई भी मनुष्य उद्धार तभी पा सकता है जब वह यीशु को अपना उद्धारकर्ता मान ले। बाइबिल इस विषय में स्पष्ट है ईसा मसीह के ही शब्दों में : ''मार्ग, सच्चाई और जीवन मैं ही हूँ, बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता।'' (जॉन 14:6)। इस पाठ में उल्लिखित इस समेत अन्य सभी उद्धरण ''नया नियम'' की पुस्तकों से लिए गये हैं।

बॉक्स 1

ईसाई धर्म के उद्धार की योजना के स्पष्ट होने की प्रक्रिया से बाइबिल के "पुराना नियम'' और ''नया नियम'' के बीच का संबंध भी स्पष्ट हो जाता है। "पुराना नियम'' यहूदी परंपरा का एक अत्यावश्यक हिस्सा है। ईसा मसीह यहूदी ही थे। उन्होंने यहूदी परंपरा का ही पालन किया और वहीं से अपनी शिक्षाओं के लिए संदर्भ जुटाये। "पुराना नियम'' में हर कहीं उस किसी की आस मिलती है जिसके आने के बारे में बार–बार कहा गया है। उस आने वाले के बारे में कई वादे मिलते हैं और ये सबके सब ईसा मसीह के रूप में पूरे होते हैं। इस तरह, ईसाइयों के दृष्टिकोण से देखा जाए तो, ''नया नियम' में उस विलक्षण घटना के दर्शन होते हैं जिसकी भविष्यवाणी ''पुराना नियम'' में की गई थी। यही नहीं ''पुराना नियम' लगातार इस बात की याद भी दिलाता रहता है कि परमेश्वर बुरे लोगों को दंड और अच्छे लोगों को उनकी अच्छाई का बदला देता है, और वह अपने विश्वासियों को कभी त्यागता नहीं है। ''पुराना नियम'' और ''नया नियम" दोनों मिलकर एक पूरे ग्रंथ का रूप लेते हैं जिसमें परमेश्वर ने अपने आपको एक क्रमिक ढंग से प्रकट किया है।

8.2.4 संगठन और प्रभु भोज

प्रारंभ में चर्चों का संगठन इस विश्वास पर आधारित था कि ईसा मसीह मुरदों में से ''जी उठे प्रभु' हैं। प्रारंभिक दौर में तो ईसाई लोग प्रार्थना के लिए प्रतिदिन इकट्ठा होते थे, लेकिन धीरे–धीरे उन्होंने सप्ताह के एक दिन को "प्रभु का दिन'' (रविवार) को प्रार्थना के लिए नियत कर दिया। आज भी ईसाइयों के गिरजाघरों में यही प्रथा सामान्य तौर पर चली आ रही है। गिरजाघर में होने वाली प्रार्थना सभा में मुख्य रूप से धार्मिक निर्देश, उपदेश, प्रार्थना और रोटी तोड़ने की रस्म होती है। रोटी तोड़ने, या ''प्रभु भोज' की इस रस्म का ईसाइयों की प्रार्थना सभा में विशेष महत्त्व होता है। ईसा मसीह ने अपने मारे जाने से पहले रात में अपने प्रेरितों के साथ अंतिम भोज के समय

रोटी ली और प्रार्थना करने के बाद उसे तोड़ा और अपने प्रेरितों को यह कहते हुए दी : "यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिए दी जाती है : मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।'' इसी तरह भोज के बाद उसने कटोरा उठाया और कहा : ''यह कटोरा मेरे उस लहू में जो तुम्हारे लिए बहाया जाता है नई प्रसंविदा (Covenant) है।'' (ल्यूक 22:19–20)। यह घटना ईसा मसीह के दुख और सलीब पर उनकी मृत्यु की प्रतीक है। ईसा मसीह के दुख उठाने और सलीबी मौत मरने से मनुष्य जाति के लिए पाप से मुक्ति का मार्ग खुला। गिरजाघरों में होने वाली प्रार्थना सभाओं में ''प्रभु भोज'' की रस्म इस विश्वास के साथ की जाती है कि उससे ईसा मसीह की मौजूदगी (अर्थात जीवित रूप) एक बार फिर उभरेगा। रोटी खाने और दाखरस पीने से ईसा मसीह के साथ सीधा और निकट का संबंध स्थापित होता है। प्रार्थना सभा में सम्पन्न होने वाली इस रस्म को प्रभु भोज भी कहते हैं।

सामान्यतया, ईसाइयों की प्रार्थना सभाओं का उद्देश्य आत्मा और सच्चाई से परमेश्वर का भजन करना (जॉन 4:24), अर्थात ईसा मसीह के माध्यम से और पवित्र आत्मा की शक्ति से पिता (परमेश्वर) की उपासना करना है।

बोध प्रश्न 1

i) बाइबिल के ''पुराना नियम'' और ''नया नियम'' के बीच क्या संबंध है? लगभग आठ पंक्तियों में स्पष्ट करें।

ii) ईसाई धर्म में शरीर और आत्मा की अवधारणा क्या है? लगभग पाँच पंक्तियों में स्पष्ट करें।

iii) ईसा मसीह मुरदों में से कब जी उठे?

   क) पाँचवे दिन के बाद

   ख) चौथे दिन के बाद

   ग) तीसरे दिन के बाद

   घ) दूसरे दिन के बाद

8.3 ईसाई धर्म की शिक्षाएँ

ईसा मसीह ने यहूदी परंपरा का त्याग तो नहीं किया, लेकिन उन्होंने यहूदियों की कुछ रूढ़ियों को अस्वीकार किया, पुराने सिद्धांतों को बिल्कुल नया रूप दिया और आदर्श सामाजिक व्यवस्था के बुनियादी सिद्धांतों को सामने रखा।

8.3.1 व्यक्ति की शुद्धता और नैतिक कार्य

ईसा मसीह ने यहूदियों की जिन प्राचीन प्रथाओं को अस्वीकार किया, उनमें से अशुद्धि को दूर करने के संस्कारों का उल्लेख किया जा सकता है। जब यहूदियों ने इस बात पर जोर दिया कि ईसा मसीह के चेले खाने से पहले हाथ धोने के अपने संस्कार का पालन नहीं करते तो ईसा मसीह ने लोगों को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, ''तुम सब मेरी सुनो, और समझो। ऐसी तो कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य को बाहर से समाकर अशुद्ध करे'' (मार्क 7:14,17)। इस तरह, ईसा मसीह सच्चाई की यह महत्त्वपूर्ण शिक्षा देते हैं कि दिखावे के संस्कारों या अनुष्ठानों से या विशेष किस्म के भोजन खाने से

कोई मनुष्य परमेश्वर के सामने शुद्ध नहीं ठहरता। मनुष्य अपने हृदय और मन की शुद्धता से ही परमेश्वर की दृष्टि में शुद्ध ठहरता है।

ईसा मसीह की शिक्षा यह है कि उचित/अनुचित व्यवहार का निर्धारण इस दुनिया की नैतिकता के आधार पर नहीं हो सकता बल्कि मनुष्य को परमेश्वर की इच्छा पूरी करनी और उसे प्रसन्न करना है। इसलिए, ईसाई व्यक्ति को अपने अच्छे कामों का बदला मिलने या उससे प्रसिद्धि प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, उसके कामों का बदला तो परमेश्वर प्रसन्न होकर इस संसार में और स्वर्ग में भी देगा। नैतिक रूप से सही कार्य करने या दान देने की क्रिया व्यक्ति को दूसरों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए नहीं करनी चाहिए कि वे उसका आदर करें, परमेश्वर दूसरों को दिखाये बिना इस तरह के कार्य करने वालों को उनका फल देता है (मैथ्यू 6:1–4)

8.3.2 पापों और बुराइयों की क्षमा

ईसा मसीह का अपने अनुयायियों से यह कहना है कि हत्या की तो बात छोड़ें, 'दूसरों पर गुस्सा दिखाना भी पाप है, और जब तक हम एक–दूसरे से मेल नहीं करते परमेश्वर हमारी प्रार्थनाओं और भेंटों को स्वीकार नहीं करता है (मैथ्यू 5:21–23)। इस तरह, परमेश्वर उन लोगों के पाप क्षमा कर देता है जो अपने प्रति किये गये अपराधों को क्षमा कर देते हैं (मैथ्यू 6:14,15)

जैसे को तैसा देना दुनिया की रीति है। लेकिन, ईसा मसीह अपने अनुयायियों से कहते हैं, ''बुरे का सामना न करना, परन्तु जो कोई तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर दूसरा भी फेर दे'' (मैथ्यू 5 : 38,39)। इसी तरह, अपने मित्रों से प्रेम करना और शत्रुओं से घृणा करना अगर बिल्कुल स्वाभाविक लगता है तो ईसा मसीह के इन शब्दों पर ध्यान दीजिए: ''परन्तु मैं तुम से यह कहता हूं किं अपने बैरियों से प्रेम रखो और अपने सताने वालों के लिए प्रार्थना करो। जिससे तुम अपने स्वर्गीय पिता की संतान ठहरोगे क्योंकि वह भलों और बुरों दोनों पर अपना सूर्य उदय करता है और धर्मियों और अधर्मियों दोनों पर मेघ बरसाता है'' (मैथ्यू 5 : 43–45)।

ईसा मसीह के ये विचार कितने अनुचित और अव्यावहारिक लगते हैं। लेकिन जीवन के सबसे कठिन दिनों में स्वयं ईसा मसीह का व्यवहार उनकी शिक्षा का एक अच्छा उदाहरण है। जब ईसा मसीह पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें मौत की सजा सुना दी गई तो उन्होंने न तो अपने पकड़ने वालों का विरोध किया और न ही न्यायालय में अपना बचाव किया। यही नहीं, जब उन्हें अपराधियों के साथ सलीब पर लटका दिया गया तो प्राण छोड़ते समय उन्होंने सलीब पर से अपने शत्रुओं से दया के ये मार्मिक शब्द कहे : ''हे पिता, इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं'' (ल्यूक 23 : 34)। इस तरह, ईसा मसीह ने अपने अनुयायियों को न केवल जीने का एक नया तरीका सिखाया, बल्कि अपने उदाहरणीय जीवन में इसे करके भी दिखाया।

8.3.3 सुसमाचार का प्रचार और बपतिस्मा

ईसा मसीह ने अपने प्रेम और क्षमा के संदेश को पूरी दुनिया में फैलाने के लिए अपने शिष्यों को आदेश दिया था। इसलिए सभी ईसाई ऐसा करने को अपना कर्तव्य मानते हैं। ईसा मसीह के सुसमाचार को फैलाने के कार्य को सुसमाचार प्रचार (evangelisation) कहते हैं।

लेकिन संदेश या सुसमाचार सुनने वाला व्यक्ति उसे सुनता है या नहीं और ईसाई धर्म ग्रहण करता है या नहीं, यह निर्णय सुनने वाले पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। इसे पवित्र आत्मा का काम माना जाता है।

जिन लोगों ने ईसाई धर्म ग्रहण किया उनके लिए अपने पुराने धार्मिक विश्वासों को त्यागने का अर्थ यह हुआ कि उनका उनके पुराने समुदायों से भी विच्छेद हो गया। इसलिए नये ईसाइयों ने अपने अलग समुदाय या चर्च बना लिए। इन चर्चों ने विभिन्न धार्मिक और जातीय समूहों के लोगों को अपनी शरण में लेकर उन्हें एक नयी ईसाई पहचान दी। इस विश्वास को अपनाने वाले को बपतिस्मा नाम की एक साधारण सी रस्म के साथ ईसाई धर्म में दीक्षित कर लिया गया।

बोध प्रश्न 2

1) ईसाई चिंतन के अनुसार उचित–अनुचित व्यवहार का निर्धारण कैसे होता है?

   क) इस दुनिया की नैतिकता के आधार पर

   ख) परमेश्वर की इच्छा को पूरी किये बिना उस दुनिया के मानदंडों के आधार पर

   ग) परमेश्वर की इच्छा को पूरी करने और उसे प्रसन्न करने के आधार पर

   घ) स्वार्थ के आधार पर।

2) ईसा मसीह के जीवन, मृत्यु और पुनरुत्थान पर प्रकाश डालने वाली (नया नियम) की चार पुस्तकों को कहते हैं;

   क) सर्वीकरण (Universalisation)

   ख) ईसाइयत (Christianisation)

   ग) सुसमाचार (Evangelisation)

3) ईसाई धर्म में प्रभु भोज का क्या महत्त्व है? लगभग पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

8.4 ईसाई सामाजिक व्यवस्था

प्रत्येक धार्मिक समूह की सामाजिक व्यवस्था कुछ सिद्धांतों के आधार पर संगठित होती है। ये सिद्धांत संगति और विचारों तथा सहअस्तित्व की समानता को आधार प्रदान करते हैं। आइए देखें कि ईसाई सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार बनती है। ईसा मसीह की शिक्षाओं से हम ईसाई सामाजिक व्यवस्था के कुछ बुनियादी सिद्धांतों की जानकारी ग्रहण कर सकते हैं।

8.4.1 सार्वभौमिक भाईचारा

ईसा मसीह के अनुसार आदर्श समाज का मूल सिद्धांत सार्वभौमिक भाईचारे का विचार है। लेकिन जैसे आदर्श व्यवहार का औचित्य और उद्देश्य परमेश्वर की इच्छा को पूरी करने और उसे प्रसन्न करने की इच्छा पर आधारित है, ठीक उसी तरह सार्वभौमिक भाईचारे का आधार भी परमेश्वर का प्रेम है। मनुष्य के प्रति प्रेम परमेश्वर के प्रति प्रेम से ही प्रवाहित होता है, यह विचार ईसा मसीह के उस जवाब से स्पष्ट होता है जो

उन्होंने एक यहूदी व्यवस्थापक के प्रश्न करने पर उसे दिया था। उस व्यवस्थापक का सवाल थाः ''हे गुरू, व्यवस्था में कौन–सी आज्ञा बड़ी है?'' ईसा मसीह ने जवाब दिया : ''तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है और उसी के समान यह दूसरी भी है कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएं सारी व्यवस्था और भविष्यवक्ताओं का आधार है'' (मैथ्यू 22:35 40) इस संदर्भ में प्रयुक्त "पड़ोसी'', जैसा कि ईसा मसीह ने स्पष्ट किया (देखिए ल्यूक 10:28–37)। पास–पास रहने वालों का अर्थ नहीं देता, बल्कि उन सभी साथी स्त्री–पुरुषों से आशय रखता है जो एक–दूसरे से प्रेम रखते हैं या उनके काम आते हैं, चाहे वे कितनी भी दूरी पर रहते हों और चाहे उनके जो भी सामाजिक नाते हों। साथियों से प्रेम रखना साधारणतया सामाजिक ढांचों में समाविष्ट नहीं होता, क्योंकि वे हमेशा "हम" और "वे'' का भेद करते हैं। अपने साथी स्त्री पुरुष से प्रेम रखने के विचार का पालन करना ईसाई धर्म के अनुयायियों के लिए इसलिए संभव है क्योंकि उनमें परमेश्वर के प्रति प्रेम होता है।

8.4.2 समतावादी दृष्टिकोण

ईसाई सामाजिक व्यवस्था का एक अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है–समतावादी दृष्टिकोण। ईसाई धर्म संस्था ने विभिन्न नस्लों, संस्कृतियों और वर्गों के लोगों को एक सूत्र में बांधा और उनमें संगतता, एकता और समानता. की एक नई भावना जागृत की। प्रारंभिक चर्च के सबसे प्रमुख संगठनकर्ता पॉल ने इस बात को जोर देकर कहा कि "अब न कोई यहूदी रहा और न यूनानी, न कोई दास, न कोई नर, न नारी, क्योंकि तुम सब ईसा मसीह में एक हो'' (गैलेशियन्स 3:28)। शुरू में जो लोग अपने–अपने समुदायों के बंधनों को तोड़कर ईसाई बने, वे एक–दूसरे को ''भाई" और "बहन'' कहते थे, वे अपनी खाने पीने की चीजें मिल बांटकर इस्तेमाल करते थे, अपनी आमदनी को आम इस्तेमाल के लिए उदारतापूर्वक दान करते थे और अपने आपको उन्होंने एक समतावादी समुदाय के रूप में संगठित किया।

ईसा मसीह ने भी अपने अनुयायियों को एक नये किस्म का नेतृत्व और अधिकार दिया। उसके अनुसार भी समतावादी आदर्श को प्रोत्साहन मिला। साधारणतया, नेतृत्व करने वाला अपने पीछे चलने वालों से अपना आदेश मनवाने के लिए अपनी सत्ता और अपने अधिकार का इस्तेमाल करने का प्रयास करता है और लोग नेतृत्व वाले पद से मिलने वाले लाभों की लालच में ऐसा पद हथियाना चाहते थे। लेकिन ईसा मसीह ने यह शिक्षा दी कि तमाम सामर्थ्य और अधिकार परमेश्वर की ओर से मिलते हैं और नेतृत्व करने वाले का काम है अपने अधीन लोगों की सेवा करना।

8.4.3 दलितों की सेवा

ईसा मसीह की शिक्षा के अनुसार आदर्श समाज का एक और महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, दलितों की सेवा के प्रति चिंता और प्रतिबद्धता। मनुष्य के रूप में उम्र भर ईसा मसीह ने दुख में पड़े लोगों के प्रति अत्यधिक दया दिखाई। अपने अनुयायियों को भी ऐसा ही करने का उपदेश देते हुए ईसा मसीह ने कहा कि जो लोग निर्धनों, अजनबियों और सताए हुओं की देखभाल करते हैं, स्वर्गीय राजा अर्थात परमेश्वर उन्हें उसका समुचित फल देगा। ऐसे लोगों के प्रति किये गये दयालुता के कार्य स्वयं परमेश्वर के प्रति दया दिखाने के बराबर थे।

कार्यकलाप 1

ईसाई समाज को आपने जिस रूप में देखा और उसे लेकर आपके जो अनुभव रहे उनके आधार पर ''हमारे समाज में ईसाई सामाजिक व्यवस्था'' विषय पर लगभग दो पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए। संभव हो तो, अध्ययन केन्द्र में अपने सहपाठियों के साथ इसका मिलान कीजिए।

8.5 ईसाई धर्म संस्था (चर्च) और व्यापक दुनिया

ईसाई धर्म संस्था (चर्च) की ईसाई समाज में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसी से ईसाई विश्व दृष्टिकोण का निर्धारण होता है। चर्च व्यापक समाज और विश्व के साथ टकराव किस तरह प्रतिक्रिया देता है, इस बात का अध्ययन करना समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। चर्च ईसा मसीह की शिक्षाओं के अनुरूप आदर्श समाज का क्रियान्वयन है। साथ ही, चर्च को व्यापक समाज के ढांचे के अंदर कार्य करना होता है। जिसके मूल्य और सामाजिक संबंधों के प्रतिरूप ईसाई सामाजिक व्यवस्था से मेल नहीं खाते। प्रारंभ से ही, ईसाई लोग इस विरोधभास को समझते थे और इन्हें इसके कारण कष्ट भी उठाने पड़े। ईसाई लोगों ने आदर्श ईसाई समाज को तो स्वर्गीय राज्य माना और मौजूद सामाजिक व्यवस्था को सांसारिक समाज या ''संसार'' समझा।

चर्च और ''संसार'' (व्यापक समाज) के बीच यह विच्छेद कई सवाल खड़े करता है: चर्च ने "संसार'' के साथ सामंजस्य किस प्रकार किया? चर्च ने संसार को किस रूप में प्रभावित किया है? संसार ने चर्च को किस रूप में प्रभावित किया है? वास्तव में, ये सामंजस्य और समावेश के समाजशास्त्रीय मुद्दे हैं।

8.5.1 संसार के साथ सामंजस्य

''संसार'' के साथ सामंजस्य करने की प्रक्रिया में चर्च का संसार को भावना और वास्तविकता में पूरा का पूरा स्वीकार कर लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि इससे ईसाई आदर्श का ही खंडन होगा और, संसार को पूरी तौर पर अस्वीकार कर देना भी संभव नहीं था, क्योंकि इससे तो शक्तिशाली राजनीतिक और धार्मिक सत्ता के साथ सीधी टक्कर होती और उसकी परिणति खूनी क्रान्ति में होती, जबकि यह ईसाई धर्म की भावना के खिलाफ है। प्रारंभिक चर्च ने वास्तव में इन दो छोरों के बीच का मार्ग अपनाया। उसने संसार को भावना के स्तर पर तो अस्वीकार कर दिया, लेकिन वास्तविकता के धरातल पर उसे स्वीकार किया। एक अर्थ में यह दृष्टिकोण ईसा मसीह की शिक्षा से मेल खाता था। ईसा मसीह ने पुरानी व्यवस्था को नष्ट करने का नहीं बल्कि उसे बदलने का प्रयास किया। हां, यह बात अवश्य इसमें निहित थी कि ईसाई जीवन पद्धति सांसारिक जीवन से श्रेष्ठ थी, और अगर कभी परमेश्वर के आदेशों और नागरिक कानून के बीच कोई गंभीर टकराव हुआ, तो ईसाई व्यक्ति के लिए मनुष्य नहीं परमेश्वर की आज्ञा शिरोधार्य होनी चाहिए। (प्रेरितों के कार्य 5:29)

8.5.2 नागरिक प्राधिकार

चर्च और ''संसार' के बीच हुए समझौते में, यह माना गया कि राजनीतिक सत्ता और अन्य नागरिक आधार परमेश्वर की ओर से थे और इसलिए उनकी आज्ञा मानना आवश्यक था (रोमन 13:1) और ईसाइयों ने कर चुकाने समेत अपने तमाम नागरिक

कर्तव्यों का पालन किया। उसी तरह, हालांकि प्रत्येक व्यक्ति को ईसा मसीह खीष्ट में समान माना जाता है, फिर भी उस समय की पितृसतात्क और सामंती व्यवस्था के अनुरूप, पत्नी को पति की आज्ञा मानने और दास को अपने स्वामी की आज्ञा मानने का आदेश दिया गया, लेकिन अधिकारी वर्ग के लोगों से भी यह अपेक्षा की गई कि वे अपने अधीनस्थों के साथ प्रेम और लिहाज का व्यवहार करें (इफिसियों 5:2—25, 6:5—9)

चर्च के प्रसार और बढ़ते असर के साथ ईसाई मूल्य और आदर्श व्यापक समाज में फैलने लगे। पश्चिम सभ्यता ने स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के जिन सिद्धांतों को अंगीकार किया उनका स्रोत ईसा मसीह की शिक्षाओं में ही है।

8.5.3 ईसाई धर्म संस्था (चर्च) पर समाज का प्रभाव

एक ओर अगर चर्च ने व्यापक समाज को प्रभावित किया है तो वहीं, कभी—कभी समाज ने भी चर्च को प्रभावित किया है। ऐसा यूरोप में विशेषकर मध्य युग में हुआ जब पूरा यूरोपीय समाज ईसाई हो गया और चर्च के पास अच्छी खासी राजनीतिक और आर्थिक सत्ता आ गई। इस प्रक्रिया में चर्च में सांसारिक मूल्य घुस आये।

8.5.4 पंथ और उपपंथ

आज ईसाई धर्म संस्था का अनेक पंथों और उपपंथों के कारण जो जटिल रूप दिखाई पड़ता है उसका कारण है मूल पंथों का बाइबिल के बताये मार्ग से भटक जाने के फलस्वरूप दबाव समूहों का उदय। पंथ कहलाने वाले इस तरह के असंतुष्ट समह या तो (1) मूल पंथ में समाकलित हैं, या (2) वे मुख्य चर्च से अलग हो जाते हैं या उससे निकाल दिये जाते हैं, ऐसा तब होता है जब असंतुष्ट गुट (समूह) अपने पंथ अलग बना लेते हैं।

i) पहले प्रकार की स्थिति चौथी, पाँचवीं और छठी शताब्दियों के मठ आंदोलनों में देखने को मिलती है। ये आंदोलन ईसा मसीह की शिक्षाओं के अनुरूप जीवन जीने के कुछ सदस्यों के प्रयास की अभिव्यक्ति थे जबकि मूल धर्म संस्थाओं (रोमन कैथोलिक और ईस्टर्न ऑर्थोडॉक्स चर्च) का सांसारिक जीवन की ओर अधिक झुकाव था। अंत में मठ आंदोलनों का समाकलन मूल धर्म संस्थाओं में हो गया जो इसके फलस्वरूप नवीकरण की प्रक्रिया से गुजरी।

ii) दूसरी प्रकार की स्थिति यूरोप में 16वीं शताब्दी के सुधारवादी आंदोलन में देखी जा सकती है। इस दौर में कई असंतुष्ट गुट रोमन कैथोलिक चर्च से अलग हो गये और इस चुनौती के फलस्वरूप उनमें भी नवीकरण की प्रक्रिया चली। प्रोटेस्टेंट चर्च केवल बाइबिल की सत्ता को मानते हैं, जबकि रोमन कैथोलिक और ईस्टर्न ऑर्थोडास्स चर्चा ने बाइबिल के अलावा अपनी चर्च परंपराओं को भी अधिकाधिक माना।

बॉक्स 2

इस तरह, चर्च और ''संसार'' के बीच होने वाला समझौता असंतुष्टि, नवीकरण या विलग्न की सदा विद्यमान प्रक्रिया की ओर भी ले जाता है। लेकिन इन तमाम बदलावों में बाइबिल स्थिरता प्रदान करने वाली शक्ति का काम करती है। चर्चों को स्थायित्व देने के अलावा, बाइबिल को विभिन्न चर्चों के बीच विश्वासों और मूल्यों की एक

बुनियादी एकता बनाने का भी श्रेय जाता है। फिर भी, अलग–अलग चर्च बाइबिल की व्याख्या अलग–अलग ढंग से करते हैं।

समाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में आपकी रुचि समूह निर्माण की गतिशीलता को जानने में होनी चाहिए। इस अनुभाग में आपको ईसाई धर्म में समूह निर्माण के बारे में अवश्य कुछ अतिरिक्त जानकारी मिली होगी। आपकी रुचि उस संस्थात्मक संजाल के बारे में जानने में भी होनी चाहिए जिसके माध्यम से ईसाई समाज संचालित होता है। इस समाज के पर्वो और संस्कारों के बारे में भी आपकी दिलचस्पी हो सकती है।

8.6 ईसाई धर्म, आधुनिक समाज और सामाजिक विकास

ईसाई आंदोलन ने नये मूल्यों पर आधारित शांतिपूर्ण अस्तित्व के लिए एक नये समाज की रचना के लिए और मनुष्यों के चयन के लिए भी एक दशा निर्धारित की। ईसाई धर्म ने जिन सामाजिक मूल्यों को वैधता प्रदान की उनके माध्यम से वह आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारक रहा है। फिर भी, सामाजिक विकास और आधुनिकीकरण के प्रत्येक चरण में ईसाई धार्मिक व्यवस्था और उसके मूल्य आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं, परिवार और नातेदारी जैसी सामाजिक संस्थाओं और स्तरीकरण की व्यवस्था जैसे अन्य कारकों के साथ अंतरनिर्भरता के जटिल संबंध बना कर रहा।

1) संस्थायन

इस संदर्भ में ईसाई संस्थायन के स्वरूपों के बारे में कुछ जानकारी ले लेना अत्यावश्यक है। संस्थायन का पहला रूप यह मानकर चलता है कि ईसाइयों की धार्मिक संगति एक बिल्कुल अलग सत्ता है जिसके अन्य समाज के साथ स्थायित्वपूर्ण संबंध नहीं होते। इसके उदाहरणस्वरूप भक्तिवादी पंथों का नाम लिया जा सकता है।

संस्थायन का दूसरा रूप कैथोलिक चर्च का है। ''इसकी व्याख्या एक स्थापित चर्च के अर्थ में की जाती है, जो एक राजनीतिक रूप से संगठित समाज का राजकीय धर्म है।'' चर्च और राज्य महत्त्वपूर्ण संगठन हैं। इसलिए चर्च ने पारलौकिक उन्मुखता हासिल कर ली और अंततः मठवाद के अपने विशेष संस्करण से इसका सरोकार हो गया और उसने अपने धर्म संघों को सांसारिक पुरोहिती के ऊपर रखा....एक अर्थ में, इससे सांसारिक राजनीतिक सत्ता को एक विशेष दर्जा मिल गया, क्योंकि सांसारिक राजतंत्र से मेल खाता कोई पोप संबंधी राजतंत्र नहीं था।

संस्थायन का तीसरा रूप है प्रोटेस्टैंट पंथों का उदय। यहाँ बुनियादी तौर पर अलगाव परम सांस्कारिक व्यवस्था को लेकर हुआ, जिसमें ''असली'' चर्च ''अदृश्य'' रहा और उद्धार विश्वास पर निर्भर रहा...बुनियादी तौर पर प्रोटेस्टैंटवाद की ओर आने का मतलब था एक विशेष प्रकार के धार्मिक संरक्षणवाद से छुटकारा। प्रोटेस्टैंट संप्रदाय की मुख्य शाखा ने कैल्विनवाद में पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य की स्थापना के लिए सांसारिक सक्रियता पर अत्यधिक बल दिया।

प्रोटेस्टैंट सुधार आंदोलन ने सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव की अपनी सामान्य प्रवृत्ति के माध्यम से आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास का द्वार खोल दिया। प्रोटेस्टैंट संप्रदाय के मानने वालों ने विज्ञान का अध्ययन किया और कानून

की भी दीक्षा ली। प्रोटेस्टैंट का सुधार आंदोलन राष्ट्रवाद के विकास से निकटता से जुड़ गया—बाइबिल के ढेरों अनुवाद देशी बोलियों में हुए और कुछ प्रोटेस्टैंट क्षेत्र तेजी से आर्थिक विकास की दिशा में आगे बढ़ गये" (वेबर, 1972 : 246)।

ii) प्रोटेस्टैंन्ट मत और आर्थिक विकास

मैक्स बेबर ने प्रोटेस्टैंट नीति और यूरोप में पूंजीवाद के विकास के बीच एक कारणात्मक संबंध को इंगित किया है। द प्रोटेस्टैंट इथिक्स एंड दि स्प्रिट ऑफ कैपिटलिज्म नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में वेबर में लिखा है कि प्रोटेस्टैंट अतिनैतिक पंथों ने इस सांसारिक संन्यास के प्रति अपने धार्मिक विश्वासों और मूल्यों को तार्किक आधार दिया, और यह ''बुलाहट'' अर्थात ईश्वर द्वारा निधारित कार्य की अवधारणा के माध्यम से संभव हुआ। यह अवधारणा सुधारवादी आंदोलन की देन थी। वेबर के अनुसार अतिनैतिकतावादी पंथों के प्रोटैस्टैंट लोगों के लिए मुख्य बुलाहटे ये हैं:

क) एक पूर्ण पारलौकिक परमेश्वर का अस्तित्व है, जिसने इस संसार की रचना की और जो इस पर राज्य करता है। लेकिन वह मनुष्य के सीमित मस्तिष्क की समझ और पहुंच से परे है।

ख) इस सर्वशक्तिमान और रहस्यमय परमेश्वर ने हम सबके लिए उद्धार या नरक दंड भोगने की नियति पहले से तय की हुई है। इसलिए हम अपने कार्यों से उस परमेश्वर के आदेश को नहीं टाल सकते जो हमारे जन्म से पहले ही पारित हो चुका है।

ग) परमेश्वर ने अपनी ही महिमा के लिए इस संसार की रचना की।

घ) कोई मनुष्य चाहे उसे सुख/दुख में से जो कुछ मिले उसे परमेश्वर की महिमा और धरती पर परमेश्वर के राज्य संबंधी कर्तव्यों को पूरे करते रहना चाहिए।

च) सांसारिक वस्तुएं, मनुष्य की प्रकृति और शरीर सब पाप और मृत्यु की व्यवस्था के अंग हैं और मनुष्य को उद्धार केवल परमेश्वर की कृपा से मिल सकता है। (औरन, 1967:221—222)

इन बुलाहटों की मदद से कैल्विनपंथी प्रोटेस्टैंट लोगों के लिए आत्म—अनुशासित, कार्य के प्रति समर्पित और ईमानदार होना, और इस संसार के संन्यास का पालन करना संभव हो गया। उनके लिए काम ही पूजा है, और वहाँ आलस्य या सुस्ती की कोई गुंजाइश नहीं है। कैल्विनपंथी विश्वास की इस विशेष प्रकृति के कारण ही इस सिद्धांत और पूंजीवाद की भावना के बीच संबंध बना, जिसकी विशेषता थी वैध आर्थिक क्रियाकलापों के माध्यम से धन कमाने के प्रति विलक्षण समर्पण। इसके मूल में यह विश्वास काम करता है कि अपने चुने हुए व्यवसाय (बुलाहट) के कर्तव्य और गुण के रूप में दक्षता से काम करना महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों के बीच संबंध और पूंजीवादी आर्थिक शासन का उदय, वेबर के अनुसार, केवल पश्चिम में हुआ। लेकिन, इस प्रकार का संबंध केवल प्रोटेस्टैंट नीति के लिए ही विशिष्ट है। यह कैथोलिक संप्रदाय में नहीं पाया जाता, न ही यह हिन्दू, इस्लाम, कंफ्यूशियसवाद, यहूदी और बौद्ध जैसे धर्मों में मिलता है, जिनका तुलनात्मक विश्लेषण वेबर ने किया है।

8.7 भारत में ईसाई धर्म

भारत में ईसाई धर्म का प्रवेश लगभग उसकी शुरुआत से ही अर्थात ईसा मसीह के एक प्रेरित थॉमस के भारत आगमन के साथ हुआ। जैसा कि किस्सा चला आ रहा है, थॉमस 52 ईसवीं में केरल के तट पर पहुंचे और उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से सात गिरजाघर बनवाये। केरल से वे मद्रास गये, जहाँ मायलापोर में 72 ईसवी में उन्हें मार डाला गया। केरल के प्रारंभिक ईसाइयों के वंशज संत थॉमस ईसाई के नाम से जाने गये। उन्हें सीरियाई ईसाई भी कहा जाता है। इसलिए नहीं कि वे सीरिया से आये, बल्कि इसलिए कि वे अपनी उपासना में लैटिन पद्धति की बजाय सीरियाई पद्धति का इस्तेमाल करते हैं। सीरियाई ईसाइयों ने केरल में एक आंशिक समाज की स्थापना की। यह एक समृद्ध समुदाय था और इन्हें ऊंची जाति का माना जाता था। उन्हें अपने धर्म को देश के अन्य हिस्सों में फैलाने में शायद अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा।

8.7.1 यूरोपियों का आगमन

भारत में ईसाई धर्म का प्रसार 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत में आने वाले यूरोपियों के साथ शुरू हुआ। पहले पुर्तगाली मिशनरी आये और फिर उनके बाद डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज और दूसरे यूरोपीय और अमेरिकी मिशनरी आये। भारतीय ईसाइयों ने जिस मिशनरी के प्रभाव में अपने धर्म का परिवर्तन किया उन्होंने उसी मिशनरी के धार्मिक तौर तरीकों को अपना लिया और उसी के अनुसार वे अलग–अलग चर्चों और संप्रदायों में बंट गये। दूसरी ओर, स्थिति यह थी कि विभिन्न देशों के मिशनरी भारत के उन हिस्सों में सक्रिय थे जहाँ उनके देशों का राजनीतिक दबदबा था, इसलिए भारत के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न संप्रदायों के भारतीय ईसाई फैल गये।

भारत में वैसे तो यूरोपीय देशों में सबसे अधिक इंग्लैंड का राजनीतिक दबदबा रहा, लेकिन शुरू में वे यहाँ मिशनरी गतिविधियों की अनुमति देने को लेकर पशोपेश में रहे। उस शासनकाल में मिशनरियों ने मुख्य रूप से आदिवासी और पहले से अछूते माने जाने वाले वर्गों में कार्य किया। भारतीयों को रोमन कैथोलिक संप्रदाय में धर्मान्तरित करने में सबसे अधिक सफलता पुर्तगाली मिशनरियों को मिली। उन्होंने सबसे अधिक सफलता दक्षिण भारत के पूर्वी और पश्चिमी तटों में हासिल की। यहाँ तक कि आज भारतीय ईसाइयों की लगभग दो तिहाई संख्या दक्षिणी प्रांतों में मिलती है, और यह भी कि कैथोलिक ईसाई बाकी तमाम संप्रदायों के कुल ईसाइयों से संख्या में कहीं अधिक हैं।

8.7.2 ईसाई आबादी

1981 की जनगणना के अनुसार भारत में ईसाइयों की संख्या 27.8 मिलियन थी, जो यहां की कुल जनसंख्या का 2.30 प्रतिशत था। ईसाई धर्म के मानने वाले भारत के प्रत्येक प्रांत और लगभग प्रत्येक जिले में मिलते हैं। लेकिन उनकी अधिकांश संख्या कुछ विशेष क्षेत्रों में ही मिलती है। मुख्य रूप से केरल, तमिलनाडू, गोआ और नागालैंड, मिजोरम, मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा के प्रभावी इलाकों में उनकी अच्छी खासी आबादी है।

8.7.3 संप्रदाय और पंथ

दुनिया में जिस तरह ईसाई समाज में अनेक विभाजन मिलते हैं, उसी तरह भारत में भी ईसाई समाज अलग–अलग संप्रदायों और पंथों में बंटा हुआ है। अधिकांश प्रोटेस्टैंट संप्रदाय 'चर्च ऑफ नॉर्थ इंडिया' और 'चर्च ऑफ साउथ इंडिया' नाम से दो चर्चों में बंटे हैं। दूसरे भारतीय ईसाइयों में रोमन कैथोलिक, एंग्लिकन और सीरियाई ईसाई हैं जिन्होंने अपनी अलग पहचान बनाकर रखी है। भारतीय ईसाइयों का सबसे बड़ा संप्रदाय रोमन कैथोलिक भी लैटिन उपासना पद्धति मानने वालों और सीरियाई उपासना पद्धति मानने वालों में बंटा है। ये अलग–अलग संप्रदाय के ईसाई देश के अलग–अलग हिस्सों में संकेन्द्रित हैं और उनके रीति–रिवाज बिल्कुल अलग हैं और उनमें उनके धर्मान्तरण के इतिहास और परिस्थिति की झलक मिलती है।

8.7.4 मिशनरी और कल्याणकारी गतिविधियाँ

अपने धर्म के सामाजिक दर्शन के अनुरूप चलते हुए भारतीय ईसाई, देश में सामाजिक कल्याणकारी गतिविधियों में खूब हिस्सा लेते हैं। उनकी विशेष दिलचस्पी दलितों के कल्याण में है। स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएं जगविदित हैं। आज केरल देश का सर्वाधिक साक्षर प्रांत है और वहाँ की स्वास्थ्य सेवाएं सबसे अच्छी हैं और इसका श्रेय जितना वहाँ के प्रबुद्ध शासकों को जाता है, उससे अधिक ईसाई चर्चों को जाता है।

कार्यकलाप 2

अपने अनुभव के आधार पर मिशनरियों की सामाजिक गतिविधियों पर लगभग एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखिए। संभव हो तो, अध्ययन केन्द्र के अन्य छात्रों के साथ अपनी टिप्पणी का मिलान कीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) ईसाई धर्म द्वारा प्रचारित आदर्श समाज के तीन बुनियादी सिद्धांतों का उल्लेख कीजिए।

ii) व्यापक संसार के साथ चर्च के सामंजस्य के परिणामों की पाँच पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

iii) भारत में ईसाई धर्म के प्रमुख संप्रदायों के नाम बताइए।

8.8 सारांश

इस इकाई के प्रारंभ में हमने ईसा मसीह के जीवन और संदेश पर विचार किया। ईसाई धर्म की स्थापना करने वाले ईसा मसीह थे। जिनके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वे परमेश्वर के पुत्र थे, लेकिन मनुष्य जाति के पापों का प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने मनुष्य के रूप में जन्म लिया, दुख उठाये, सलीब पर अपनी जान दी और फिर मुरदों में से जी उठे। ईसाई धर्म ने परमेश्वर के जिस वचन या दैवीय रूप से प्रेरित उपदेशों को स्वीकार किया, वे बाइबिल में संकलित हैं।

इस इकाई में हमने ईसाई धर्म की शिक्षाओं को भी स्पष्ट किया। ईसा मसीह का जीवन और उनके उपदेश ईसाई धर्म का आधार हैं। ईसा मसीह ने जिस तरह का

जीवन जीने का उपदेश दिया और स्वयं जिया वह उस समय के आम चलन के विपरीत था। उन्होंने जिस नैतिक व्यवहार और सामाजिक जीवन को अपने उपदेशों और कर्म में उतारा उसका आधार परमेश्वर का प्रेम और उससे प्रवाहित होने वाला साथियों के प्रति प्रेम है। जब ईसा मसीह मुर्दों में से जी उठे और स्वर्ग में उठा लिए गये तो उसके बाद के उनके अनुयायियों में एक उल्लेखनीय बदलाव आया, जो उन पर पवित्र आत्मा के उतरने के कारणं था। तब से विश्वास किया जाता है कि पवित्र आत्मा उन ईसाइयों को आत्मिक सामर्थ्य और प्रेरणा देती है जो यीशु की शिक्षाओं के अनुसार चलते हैं। ईसाइयों की धार्मिक प्रार्थना सभाओं का मुख्य उद्देश्य ईसा मसीह के माध्यम से और पवित्र आत्मा की शक्ति से परमेश्वर की उपासना करना है।

इस इकाई में हमने ईसाई सामाजिक व्यवस्था और इस ईसाई समाज में चर्च की भूमिका पर भी विचार किया। ईसाई समुदाय धर्म की स्थापना ईसा मसीह के उपदेशों के अनुरूप हुई। लेकिन चर्च को विपरीत प्रतिमानों और व्यवहार वाले व्यापक संसार के साथ सामंजस्य स्थापित करना होता है, जिसके कारण ईसाइयों के सामने असाधारण किस्म की समस्याएं खड़ी होती हैं।

इकाई के अंत में हमने भारत में ईसाई धर्म के कुछ पहलुओं पर विचार किया। भारत में ईसाई धर्म पहली शताब्दी ईसवीं में ही आ गया था, और केरल में एक ईसाई समुदाय बन गया था। लेकिन देश के विभिन्न हिस्सों में इसका प्रसार 16वीं शताब्दी में यूरोपीय मिशनरियों के आगमन के साथ ही हुआ। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में ईसाइयों की संख्या कुल जनसंख्या का केवल 2.30 प्रतिशत थी, लेकिन देश के कुछ हिस्सों में उनका अच्छा खासा जमाव है। ईसाइयों ने देश में सामाजिक कल्याणकारी गतिविधियों में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।

8.9 संदर्भ

बर्टान, ए.जी. 1990, दि रिलीजन ऑफ दि वर्ल्ड, ऑलिमपिया पब्लिकेशन।

कलेमैन, सी. (संपा) 1988, रिलीजन्स ऑफ दि वर्ल्ड मानस पब्लिकेशन, नई दिल्ली

मैक्वारिस जे., 1966, प्रिसिप्ल्स ऑफ क्रिश्चियन थियॉलापी, एस.सी.एम. प्रेस, लंदन

वेबर, एम. 1948, (1972 रीप्रिंट) प्रोटेस्टैंट एथिक्स एंड दि स्प्रिट ऑफ कैपीटलीज्म। ट्रांसलेटिड बाई टी पार्सनल, अल्लेन एंड अनविन, लंदन।

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

क्लीमेन, सी, 1988. ''रिलिजंस ऑफ द वर्ल्ड'' पुनःमुद्रण'', (अंग्रेजी अनुवाद) दिल्लीः मानस पब्लिकेशंस।

मैकारिस, जे., 1966 ''प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिश्चियन थियोलॉजी'', लंदनः एस.सी.एम.प्रेस।

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) ईसाई धर्म का अभिन्न अंग है उद्वार की योजना जिसके विषय में पुराना नियम और नया नियम दोनों में विवरण है। पुराना नियम में उद्वारकर्ता के आगमन के बारे में वादे, विवरण और भविष्यवाणियाँ हैं। ये सब बातें ईसा मसीह के रूप में पूरी हुई जिनके जीवन और शिक्षाओं का वर्णन नया नियम में हैं। नया नियम इस अर्थ में पुराना नियम का साक्षी है। ईसा मसीह यूहदी थे और नया नियम में मिलने वाली उनकी शिक्षाओं में जगह–जगह पर पुराना नियम की शिक्षाओं का हवाला मिलता है।

ii) जैसे कि बाइबिल में कहा गया है, मनुष्य के पास शरीर और आत्मा होती है। शरीर तो मृत्यु के साथ नष्ट हो जाता है, लेकिन आत्मा अनंत काल तक जीवित रहती है। उद्वार का अर्थ है मृत्यु के बाद स्वर्ग में आत्मा का जीवित रहना। ईसाई धर्म के अनुसार, मनुष्य धरती पर केवल एक बार जन्म लेता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

बोध प्रश्न 2

i) ग

ii) ग

iii) रोटी तोड़ने या "प्रभु भोज'' का ईसाई उपासना पद्वति में विशेष महत्त्व है। प्रार्थना सभा में ''प्रभु भोज' के दोहराये जाने से एक बार फिर ईसा मसीह के साथ मिलन होता है। ऐसा ईसाई लोग विश्वास करते हैं। प्रार्थना सभा की इस रस्म को प्रभु भोज या परम प्रसाद कहते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) क) सार्वभौमिक भाईचारा

ख) समतावादी दृष्टिकोण

ग) दलितों की सेवा

ii) ईसाई धर्म में संसार के साथ न तो पूर्ण सामंजस्य की बात है और न ही पूर्ण अस्वीकारता की। उसमें एक संतुलित दृष्टिकोण पाया जाता है। प्रारंभिक चर्च आत्मिक रूप से तो संसार को अस्वीकार करता है, लेकिन यथार्थ में उसे स्वीकार करता है।

iii) क) रोमन कैथोलिक

ख) ईस्टर्न ऑर्थोडॉक्स चर्च

ग) सीरियाई ईसाई।